धूमिल : जीवन–मूल्यों की तलाश में

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉधी राजकीय महिलामहाविधालय,
रायबरेली, उ.प्र.

हिंदी–काव्य में प्राचीनता एवं आधुनिकता के मध्य चलने वाली लड़ाई सन् साठ के पश्चात् आधुनिकता की लड़ाई में परिवर्तित होने लगी। गत बीस वर्षो के हिन्दी–काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि जहॉ छठे दशक के कुँवरनारायण, श्रीकान्त वर्मा, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय जैसे विशिष्ट कवियों ने अधिक विकसित काव्य संवदेना और शिल्पपूर्णता का परिचय दिया, वहीं सातवें–आठवें दशक के पैने, तीखे एवं बहुत हद तक विस्फोटक नवीन यथार्थ को मानवीय समकालीनता तथा राजनीतिक शब्दावली में अभिव्यक्त करने वाली एक नयी पीड़ी में धूमिल सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक चर्चित नाम है, जिन्होने कविता की अन्तर्वस्तु और संरचना में, और एक तरह से देखा जाय तो कविता को सम्पूर्ण अवधारणा में, क्रान्तिकारी परिवर्तन का संकेत दिया।

धूमिल के कवि–कर्म की विवशता है कि कविता को अपने प्रासंगिक यथार्थ से पृथक नहीं देख पाते। कविता के सम्बन्ध में उनकी सारी सुक्तिनुमा पंक्तियां किसी न किसी स्तर पर समकालीन यथार्थ को ध्वनित करती है। समकालीन यथार्थ में राजनीति उन्हें सबसे ऊपर दिखाई देती है जिसने आज मनुष्य को गलत रास्ते की ओर उन्मुख कर दिया है। धूमिल के ही शब्दों में – ''युवा लेखन के लिए राजनीतिक समझदारी जरूरी है। बिना इस राजनीति समझदारी के आज का लेखन संभव नही। यह वर्गो की समझदारी है। क्या बराबरी का दर्जा और आत्महीनता से मुक्ति का रास्ता एक नहीं? यह आता कहॉ से है? आर्थिक मुक्ति से और, इसी को सब टुकड़खोर और हरामखौर शब्दों के कुहासे से ढॅकने की व्यर्थ कोशिश करते है।'' यह आज के परिवेश की वह सच्चाई है जिसे झुठलाने की कोशिश निश्चय ही बेमानी होगी। धूमिल की यह समझ, चाहे व्यक्तिगत अनुभवजन्य हो या सामाजिक अनुभवजन्य, एक सही और ईमानदार समझ है। इसमें दो राय नहीं। जनता की आर्थिक मुक्ति के लिए सक्रिय यह सोच धूमिल को व्यवस्था के विरोध में ले गयी और उनका यह विरोध आत्मविरोधी भी साबित हुआ। धूमिल के इस विरोधी रूख को मात्र निराशाजन्य कहना, प्रकारान्तर से उसी शाब्दिक कुहासे को बुनना होगा, जिसका संकेत ऊपर के उद्धारण में दिया गया है। धूमिल का परिवेश, उनकी राजनीतिक समझ उन्हें विवश कर रही थी कि जन–जीवन के पक्ष में वे उनका विरोध करें जो उसका शोषण कर रहे हैं। तभी वे इस सच्चाई को अभिव्यक्त कर सके कि –

''कला तुमने संसद को
बाहर आने के लिए आवाज दी थी
नहीं अब वहां कोई नहीं है
मतलब की इबारत से होकर
सबके सब व्यवस्था के पक्ष में
चले गये हैं।''

सच्चाई के इस अहसास से संवेदित होने के लिए साहित्य–शास्त्र की शरण, लेने की अपेक्षा

परिवेशगत लगी स्थितियों का सामना करना ज्यादा मुनासिब है, तभी प्रतिक्रियात्मक से लगने वाली आक्रोश के भीतर छिपी गहरी पीड़ा का अनुभव किया जा सकता है।

यहीं परिवेशगत सच्चाई का सामना क लेना भी अनुचित नहीं होगा। आज सर्वशक्तिमान राजनीतिक व्यवस्था ने आदमी को आत्महीन बना दिया है। जब तक जड़ हो रही इस व्यवस्था को नहीं तोड़ा जाता, तब तक सार्वजनिक धरातल पर जीवन–मूल्यों की चरितार्थता की बात अप्रासंगिक होगी। वह भी तब, जब व्यवस्थाजन्य विविध हथकंडों का उपयोग रचनाकार की भी ''मतलब की इबारत से होकर'' व्यवस्था के पक्ष में आने के लिए हो रहा है। यही वह स्थल है जहॉ साहित्य में ईमानदारी की बात उठती है और लेखक की पक्षधरता की परीक्षा की कसौटी पर कसा जाता है। यदि लेखक ईमानदारी के साथ अपने रचनात्मक दायित्व का निर्वाह करने के प्रति कटिबद्ध है तो निश्चय ही वह ऐसी दमघोंटू व्यवस्था का विरोध करेगी। उसकी रचना उस व्यवस्था की पोल खोलेगी। व्यवस्था की समकालीन हालत को मद्देनजर रखते हुए ही डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने कभी पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त कर देने का सुझाव दिया था। दुर्भाग्य से उनकी बात अनसुनी कर दी गयी और हम देख रहे हैं कि परिवेश का भयावहता दिनोदिन बढ़ती जा रही है।

धूमिल इस सच्चाई की, उसको पूरा नग्नता के साथ, समाज के सामने उजागर करने की पेशकश करते है। उनका विश्वास है कि सारे ईमानदारी के साथ यदि व्यवस्था के विरोध में खड़े हो जाये, तो जर–जर व्यवस्था को हटाकर नयी व्यवस्था को लाने की प्रक्रिया आरम्भ की जा सकती है। कारगर रचनात्मक विरोध ही व्यवस्था की जड़ता को तोड़ सकता है और इसके लिए उसमें सामुदायिकता का साहस अनिवार्य है। दरअसल धूमिल की इस समझ की सामयिक प्रासंगिकता को नजरअंदाज करके उनकी समीक्षा करना अनुचित होगा। इसमें शाश्वत जीवन–मूल्यों की अवहेलना की नहीं, उनकी परिवेशगत विसंगति को उजागर करने का स्वर प्रमुख है। समकालीन संदर्भो में साहसिकता लेखकीय ईमानदारी की दृष्टि से सर्वोपरि जीवन–मूल्य है। इसके अभाव में कविता जो कुछ भी कहें, कारगर हस्तक्षेप नहीं कर सकती। धूमिल की दृष्टि में आज कारगर हस्तक्षेप कविता का युगीन उत्तरदायित्व है। अतएव उनकी कविता में जीवन–मूल्यों के जो चित्र मिलते है, वे युगीन यथार्थ के संदर्भ में उनके विघटन अथवा खोखलेपन के सार्थक प्रमाण है।

जीवन में स्वतंत्रता एक ऐसाा मूल्य है जिसके अभाव में आदमी का जीवन नाटकीय हो जाता है। इस सम्बन्ध में धूमिल के विचार द्रष्टव्य है–''स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और उसके लिए पहल तथा उस पहल के समर्थन में लिखा गया साहित्य ही समकालीन साहित्य है।'' हमारी प्रजातंत्रीय जीवन–व्यवस्था में स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण जीवन–मूल्य और कुछ भी नहीं। अतएवं लेखक का परम कर्तव्य है कि स्वतंत्रता के नाम पर चल रही विसंगत क्रियाओं का विरोध करें। धूमिल के काव्य के स्वतंत्रता की बनी बनाई धारणा का निरूपण नहीं, बल्कि उसकी समकालीन स्थिति को पूरी सच्चाई के साथ रूपायित किया गया है जब वे पूछते हैं कि :–

''क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगो का नाम है

जिन्हें एक पहिया ढोता है

या इसका कोई खास मतलब होता है?''

तो जाहितर है कि स्वतंत्रता का ''खास मतलब'' गायब है और वह मात्र एक खोखला शब्द बनकर रह गई है। यथार्थ जीवन में जीवन–मूल्यों की सार्थकता की खोज जोखिम भरा है, किन्तु

वस्तु–स्थिति को देखते हुए वही सही है। ऐसे रचनाकारों को उन स्तरों से टकराना पड़ता है, जिन तक जाना परम्परागत काव्य के लिए वर्जित रहा है लेकिन धूमिल का काव्यत्व उन्हीं पर जिन्दा है। उन्हीं के शब्दों में :–

'मेरी कविताएँ

अंधेरे और कीचड़ और गोश्त की

खुराक पर जिंदा हैं।

अंधेरे, कीचड़ और गोश्त यहाँ समकालीन परिवेश को उसकी समग्रता में व्यंजित करने वाले जीवन प्रतीक हैं, मात्र उक्ति वैचित्र्य के अंग नहीं।

ऐसे कवि का जो जीवन में वास्तविक उजाले की तलाश की पहल करता है, हश्र यही होता है कि उसे लगातार अंधेरे से टकराना पड़ता है। धूमिल की कविता में कदम–कदम पर अंधेरा दिखाई पड़ता है जो उनकी रोशनी की तलाश का परिवेश है। वास्तव में धूमिल अंधेरे से बच नही सकते थे। क्योकि उनकी मानसिकता उससे टकराने की थी। उसके स्त्रोत को ही नष्ट कर देने की थी। इस लिए अपनी कविता को उन्होने किसी दर्शन का जामा नही पहनाया। उसे वास्तविका की पहचान तक आगे बढ़ा। उन्होने वास्तविकता की जानकारी देकर आम आदमी को संघर्ष करने का साहस प्रदान किया। धूमिल ऐसे रचनाकार है जिन्होने समसमायिक संदर्भो में जी रहे आदमी को अपनी कविता का केन्द्र बनाया था उनका लक्ष्य ''भाषा में आदमी होने की तमीज'' हासिल करने में सहयोग देने के लिए कविता को एक सशक्त माध्यम बनाया था धूमिल की यह तमीज काव्य क्षेत्र में जन्म ले रही शाही तमीज से भिन्न है। उसमें आदमियतता पर संदर्भ हीन सोच का मूलम्मा न होकर संदर्भगत सार्थक पहचान प्रमुख है। आज यह सार्थक पहचान धूमिल होती लगती है। उसे हासिल किये बिना कविता चाहे सौंदर्य बोध के अछूते आयम उद्घटित करने में सफल होने का दावा कर सकती है किन्तु अपने हस्तक्षेप करने की सार्थक निर्वाह नही कर सकती। उसके लिए एक ऐसी भाषा होना आवश्यक है जो अपनी चमत्कति से काव्य की रंजनात्मक मानिसकता को झकझोरने में सफल हो सके। धूमिल की कविता इसी संदर्भ में अपना नया मुहावरा पाने में सफल हुई है, इस लिए समीक्षा के सुपरिचित नुस्खों के समझ एक प्रश्नचिन्ह् बन कर खड़ी होती है।

धूमिल का स्वर वक्तव्य की व्यंगतामक भगिमा से परिचालित होने के कारण अर्थ के जिस स्तर पर सम्प्रेषित करने का प्रयास करता है उसे सही ढ़ग से ग्रहण न कर पाने के कारण उनकी कविता को चमत्कार प्रदर्शन की भी संज्ञान दी जा सकती है जबकि सच्चाई यह है कि वे ऐसे रचनाकार ही करते है जिनके समक्ष पहचान कायम करने का लक्ष्य मुख्य होता है। धूमिल के समक्ष पहचान कायम करने का लक्ष्य उस ऊब को वाणी देना था जो निरन्तर कसमसा रही थी, किन्तु थपकी देकर उसे सुलाया जा रहा था उन्ही के शब्दों में :–

कविता वह किस गवार आदमी को ऊब से

पैदा हुई थी और

एक पढ़े लिखे आदमी के साथ

शहर में चली गई

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वे गांव की ऊब को सर्थकता देने के हिमायती थे न कि शहरी काव्य बोध के तहत उसे मात्र कलात्मक बनाने का। उनकी पहचान यही है कि वे अपने गवारूपन को न छोड़ते हुये अपने काव्यात्मक सरोकार को बनाये रखने में सफल है। अपने कविता को उसके उद्गम स्त्रोत से लगातार सम्पृक्त रखने के लिए उन्होने सूक्तियाँ गढ़ी, गँवई शब्दों का उन्मूक्त एवं सटिक उपयोग किया तथा शहर को गॉव की ओर झुकाने में इस हद तक भी सफल

हुये। उनका काव्य सरोकार इतना स्पष्ट है कि उसको लेकर भ्रम की कोई गूंजाइश नही। कविता उनके लिए जीवन जीने का साधन है, इतना सशक्त साधन की उसके माध्यम से जीवनगत स्थितियों में हस्तक्षेप कर परिवर्तन लाया जा सकता है। साठोत्तरी परिवेश के संदर्भ मे देखे तो धूमिल की तखी प्रतिक्रिया उनके इतिहास बोध से उपजे उनके दायित्व बोध को उजागर करती है। वे उन तथ्यों पर चोट करते है जो जीवन मूल्य का ढोग रचने में मौखिक तौर पर बढ़े ही कुशल तथा कर्म के धरातल पर बिल्कुल खोखले है। इस प्रकार उनकी प्रतिक्रिया रचनात्मक के एक नवीन बोध को संवेदित करती है जो अपने आप में एक सामाजिक मिशाल है और इसे निरर्थक नही कहा जा सकता।

परिवेश का गहराा लगावा ही धूमिल के काव्य की शक्ति है एक हद तक सीमा भी। उन्होने अपनी रचनात्मक शक्ति को समसायिक संदर्भो से गहराई तक जोड़ा है। एक साधारण आदमी को केन्द्र में रखकर अपने अनुभव को वाणी दी। इस तरह वे एक नग्न यर्थाथ को नग्न भाषा में व्यक्त करने की ऐसी शुरूआत करते है जिसका सामना करने के लिए अद्‌भुत साहस की जरूरत होती है। यह साहस धूमिल में कुछ ज्यादा ही है, धूमिल को अंताविरोधी ग्रस्त कहा गया है। उनके अन्तविरोध का कारण उन असाधारणात्मक था। एक तरफ उनके रोम–रोम अपने संपूर्ण वैविध्य के साथ गॉव सात गॉव रच–बसा था तो दूसरी तरफ अर्थ मुक्ति को लेकर वे एक खास विचार प्रणाली से जुड़े हुये थे। खास विचारधारा से उनका जुड़ना भी सौदेश्य था। परिवेश के प्रति गहरे लगाव के कारण उन्हें सम्पूर्ण विसंगतियों के केन्द्र में अर्थ को पाया था। उनका विश्वास था कि अर्थ लोलुप्ता ने ही लोगों को शोषक और स्वार्थो पूर्ण बना दिया है जब तक आम आदमी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हो जाता, इसकी स्वतंत्रता की बात भ्रामक है। आम आदमी को आर्थिक मुक्ति के सरोकार ने ही धूमिल को विरोध में ला खड़ा किया और उन्होंने उन सारे रिश्तों का विरोध किया जो अर्थ–लोलुपता के कारण गलत हो गये हैं, तभी उन्होंने लिखा :–

''उसकी ऑखों में

चमकता हुआ भाईचारा

किसी भी रोज तुम्हारे चेहरे की हरियाली को

बेमुरव्वत चाट सकता है।''

अस्वाभाविक नहीं कि यह सोच उन्हें मार्क्सवाद की ओर ले गई लेकिन उनका मार्क्सवावदी रूझान शोषण–मुक्त तक ही सीमित है–यह भी तथ्य है। इससे आगे वे नहीं बढ़ पाते। वे प्रजातंत्र में विश्वास रखने वाले कवि हैं। व्यक्ति–स्वातंत्र उनका अंतिम ध्येय है। यही कारण है कि अपनी कविताओं में उन्होने सबसे ज्यादा प्रहार उस प्रजातंत्र पर किया है जो सुविधापस्त लोगों के बहस का एक विषय भर बनकर रह गया है। प्रजातंत्र पर उनका तीखा व्यंग्य इस पद्धति को लेकर नहीं है बल्कि इन गतिविधियों को लेकर हैं जिन्होने प्रजातंत्र का मात्र मजाक बनाकर रख दिया है। कहना न होगा कि जिस परिवेश में धूमिल सांस ले रहे थे अंतविरोधी–ग्रस्ता सर्वथा संघर्षरत थे। वे रोशनी की खोज में थे, उसे पाया नहीं था। अतः उनकी कविता का दर्शन उपलब्धि का नहीं, उपलब्धि के लिए संघर्ष–प्रक्रिया का है। उनकी कविता जिजीविषा, संघर्ष और साक्षात्कार के संश्लिष्ट स्वर की अभिव्यक्ति है।

धूमिल की निषेधात्मक पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। अस्वीकार को आत्मसत् करने के बाद उनकी कविता में निषेधात्मक का आना बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं है। उन्होने अनुभव कर लिया था कि जिस तंत्र के बीच उन्हें सांस लेनी पड़ रही है, वह गलत हो गया है। अतः उससे संपृक्त उनत्तवों के प्रति उन्होंने निषेधात्मक रूख अपनाया तो तंत्र को गलत

बनाने में सक्रिय था। बुद्धिजीवी और साहित्यकार भी अपने दर्शन एवं रोमाण्टिक कल्पना से उसे ज्यों का त्यों ढोए चले जा रहे थे, क्योंकि वे खतरा उठाने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। उन्हें लगा कि

''..... आग है

मगर वह

भभककर बाहर नहीं आती

क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ

एक ''पूंजीवादी' दिमाग है

जो परिवर्तन तो चाहता है

मगर आहिस्ता–आहिस्ता

कुछ इस तरह की चीजों की शालीनता

बनी रहे।''

ऐसी स्थितियों में पूंजीवादियों के कारनामों को ध्वस्त करने तथा शीघ्र परिवर्तन के लिए आवश्यक था कि वे साहस करें और निषेध का अस्त्र उठाएं। वैसे निषेधात्मकता कोई मूल्य नहीं है जिसे रचनात्मक के लिए स्वीकार किया जाय, किन्तु विषम परिस्थितियों को तात्कालिक दबाव के संदर्भ में इसका प्रयोग सर्वथा असमीचीन भी नहीं माना जा सकता। धूमिल के निषेध का व्यंजित स्वर निषेध से आगे बढ़कर जीवन–मूल्यों की पुनर्स्थापना से जुड़ा हुआ है। निषेध उनके लिए एक हथियार है जिससे वे आघात देना चाहते है। निषेध कविता का ध्येय नहीं है। उन्होने निषेध की सही उपयोग पर बल दिया है। उनकी आकांक्षा मात्र यह थी कि समसामयिकता को दृष्टिगत कर साहित्यकार इस औजार का सही उपयोग करें और आम आदमी को पूंजीवादी दिमाग से मुक्ति दिलाएं। उनसे पूर्व उस जिम्मेदारी और सक्रियता का अहसास नहीं मिलता जो धूमिल में है।

इसका एक मात्र कारण आम आदमी के प्रति उनका लगाव है। धूमिल विरोध के लिए विरोध करने के पक्षधर हैं अतः उनके निषेध का एक छोर स्वीकार से भी जुड़ा है। वे भटकते नहीं, प्रासंगिक सार्थकता पर टिके रहते हैं।

धूमिल पर अश्लीलता और बगैर जरूरत प्रोत्साहन देने का आरोप लगाया गया है। डॉ0 मंजुल उपाध्याय कहती हैं कि – ''धूमिल पर राजकमल चौधरी का प्रभाव है। कोई मार्क्सवादी दृष्टि का कवि, किसी प्राकृतिक मनः स्थिति में, नारी के विषय में उद्धृत भी हो सकता है, किन्तु मार्क्सवाद और क्रांति का बोध नारी को नग्न कर उसके प्रति औद्धत्व का समर्थन नहीं सिखा सकता, क्योंकि क्रांतिकारी नारी को साथी मानते हैं, मात्र ''औरत'' नहीं।'' यह सही है कि धूमिल की कविताओं में यौन–जीवन के जो चित्र मिलते हैं। उसमें सरसता का आभाव है। ये चित्र अपने आस–पास के फैले जीवन और समाज से लिये गये हैं। समाज में यौन–सम्बन्धों की अनेकरूपता है। वहां यदि व्यभिचार का दलदल है तो प्यार की सारिता भी है किंतु धूमिल ने चित्रण के लिए दलदल को ही चुना है। ऐसा लगता है कि धूमिल जीवन की विकृतियों को उघाड़कर सामने फेंक देना चाहते हैं। अपना असंतोष आक्रोश प्रकट करते हुए विद्रोह की आग भड़काना चाहते है। अतः यह समझना कि धूमिल को यौन विकृतियां पसन्द है–बहुत बड़ी भूल होगी। वस्तुतः उनके चित्रण में अस्वीकार का स्वर है। सत्य के एक पक्ष को ही चित्रित करने के कारण उन पर एकांगी होने का आरोप सहज ही लगाया जा सकता है और उसे अराजकता का एक लक्षण भी माना जा सकता है, किन्तु यह आरोप उनकी प्रखरता को धूमिल नहीं बना सकता। कारण यह कि उन्होंने कभी भी जीवन के उज्ज्वल पक्ष पर चोट नहीं की है, भले ही उसका चित्रण उन्होंने

कम किया हो। चोट उन्होंने हमेशा कुत्सित और अस्वीकार्य पर ही किया है, सुन्दर और स्वीकार्य पर नहीं जो मूलतः एक विद्रोही व्यक्तित्व के कवि के लिए सर्वथा स्वाभाविक है जो यह स्वीकारते हैं धूमिल का नारों के प्रति एक रूग्ण और दूषित दृष्टिकोण था, उन्हें ''पत्नी के लिए'' कविता देखना होगा :–

''देह तो आत्मा तक जाने के लिए सुरंग है

रास्ता है।

तुम्हारी अंगुलियों जैसे कविता की

गतिशील पंक्तियाँ हैं।

तुम्हारी आँखे कविता की गंभीर

किन्तु कोमल कल्पना हैं

तुम्हारा चेहरा

जैसे कविता की

जमीन है

तुम एक सुन्दर और सार्थक

कविता हो मेरे लिए।''

धूमिल पर आरोप लगाने से पूर्व मंजुल उपाध्याय को इन पंक्तियों से गुजरना चाहिए था। धूमिल ''स्त्री'' को ''हमबिस्तर नहीं'', ''हम सफर'' मानते हुए उसका पूरा सम्मान करते हुए पुरूष के बराबर का दर्जा देते हैं। घर में वापसी शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियां इसका प्रमाण है :–

''पत्नी की आंखे, आंखे नहीं

हाथ हैं, जो मुझे थामे हुए हैं।''

कुल मिलाकर देखें तो धूमिल औरत के विरोधी नहीं, औसत औरत की रूग्णता के विरोधी हैं।

यों धूमिल की भाषा, विम्बों, प्रतीकों के सम्बन्ध में आवश्यक चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। अन्त में इतना ही कहना चाहूंगा कि अपने शिल्पगत सीमाओं के बावजूद धूमिल की भाषा में अपनी एक खास ताकत मौजूद है। काव्य बाह्य शब्दावली का इतना ताजा, इतना जीवन उपयोग कम कवियों में दिखायी देता है। भाषा के प्रति उनका कोई अभिजात्य–संस्कार नहीं था। बल्कि उस संस्कार को तोड़ना ही उनका लक्ष्य था। उन्होने महसूस किया कि कवि का प्रथम कर्तव्य कविता को भाषाहीन करना है। उन्होने भाषा के सभी पूर्व प्रचलित स्वरूपों को अस्वीकार कर एक नयी भाषा की रचना की। धूमिल की भाषा और संवेदना की अभिन्नता समकालीन हिन्दी कविता का सार्थक मुहावरा बनकर प्रस्फुटित हुई है। उनकी भाषा उनके अनुभवों की अभिव्यक्ति की ईमानदार उपलिब्ध है। अपने अनुभव–संवेदना को धूमिल ने उन सारे भाषागत हथियारों के उपयोग सें अभिव्यक्ति दी है, जो उन्हें उपलब्ध थे। इन औजारों में क्रुद जैसे, तुक, वक्तव्य, नाटकीयता आदि तो ''आउट ऑफ ऑफ डेट'' हो चुके थे लेकिन धूमिल ने उन्हें घिसकर धारदार बनाया और उसे आजमाकर उनकी काव्यगत उपयोगिता को एक बार पुनः प्रतिष्ठित किया। धूमिल के काव्य–शिल्प में प्रयुक्त किसी भी प्रयोग को लें तो देखेंगे कि उसका उपयोग संप्रेषणीयता में सहायक होने से हुआ है। उनकी सापटबयानी और तुकबन्दी अपनी बहुलता के बाद भी जो कविता का अभिप्रेत है। धूमिल के बिम्ब भी उनकी प्रांसगिक सोच के तहत उत्सनिर्मित संप्रेषण के माध्यम बनकर आये हैं, न कि मात्र उनकी बिम्ब–रचना की कुशलता के प्रमाण बनकर। अतः उनके टटकेपन अप्रतिम स्वरूप तथा ऐंद्रिक संवेदन को अगल से व्याख्यायित–मूल्यांकित करने से अपेक्षा उन्हें धूमिल के काव्य–सरोकर से जोड़कर ही देखा जाना जायज है। कहने की आवश्यकता नहीं कि धूमिल की भाषा संरचना में उनका बिम्ब–विधान

उसी विरोध या अस्वीकार से उद्भावित है जिसकी तीखी आलोचना करते हुए उनके बिम्ब को अप्रतिम कहा गया है। नयी समीक्षा कथ्य एवं रूप को इस तरह पृथक कर देखने–परखने का विरोध करती है और वस्तुनिष्ठता बनाए रखने के लिए इस प्रकार का अलगाव आज अप्रासंगिक माना जाता है। दरअसल भाषा और वस्तु के साथ सही संगति न बैठा पाने के कारण ही ऐसा निर्णय दिया जाता है। कि कथ्य तो प्रतिक्रियात्मक है और बिम्ब योजना अत्यंत सफल। धूमिल की भाषा तथा उनकी काव्य–वस्तु में इस तरह की माफी नहीं है। काव्य की सार्थकता से रूपायित करने के संघर्ष में उनकी भाषा–संरचना को केवल कलात्मक चमत्कार तक सीमित करने का प्रयास धूमिल के प्रति ही नहीं, साठोत्तरी कविता के सही एवं सार्थक मिजाज के प्रति एक बड़ा षड्यंत्र कहा जायेगा।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपने समसामयिक इरादों तथा कार्रवाइयों में धूमिल शत–प्रतिशत ईमानदार तथा नए जीवन–मूल्यों की तलाश में संलग्न कवि हैं। उनको कविता में नए जीवन–मूल्यों का स्पष्ट स्वरूप रूपायित नहीं होता, किन्तु आदमियतता के संदर्भ में परम्परागत मूल्यों की विसंगतियों पर उनके तीखे प्रहार उनकी मूल्यचिंता को गहराई से रूपायित करते है। धूमिल की इस स्थापना को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि सामूहिकता को साहस देकर भी नए भारतीय समाज का मानवीय स्वरूप विकासित हो सकता है, साथ ही यह भी धूमिल की सर्जनात्मक क्षमता के बारे में, धूमिल के यथार्थबोध की सीमाओं के बारे में और एक हद तक धूमिल के वैचारिक अन्तर्विरोध के बारे में बहस हो सकती है, धूमिल की काव्य–संवेदना का फलक मुक्तिबोध से अधिक सीमित हो सकता है, पर धूमिल के योगदान का ऐतिहासिक महत्व प्रायः निर्विवाद है।

संदर्भ

- ✓ कल सुनना मुझे, ''भाषा की रात में धूमिल की भूमिका'', धूमिल पृ0 4
- ✓ संसद से सड़क तक, धूमिल पृ0 67
- ✓ कल सुनना मुझे, ''भाषा की रात में, धूमिल की भूमिका'', धूमिल पृ0 1
- ✓ संसद से सड़क तक, धूमिल पृ0 10
- ✓ समकालीन कविता और धूमिल, डॉ0 मंजुल उपाध्याय, पृ0

Copyright © 2015, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.